उरूज

हिन्दी ADDA

पांडेय बेचन शर्मा

उरूज

https://www.hindiadda.com/uruz/

शहर के मशहूर एम.एल.ए. केवलचंद की माता दयावतीदेवी के देहांत के तेरहवें दिन की बात। बात, दिन तो क्या, शाम की है, और जरा प्राइवेट नेचर की है।

शाम को मातम-पुर्सी के लिए मिलने को शहर का वह बनिया महाजन आया, खुर्राट लाला घीसालाल - घीसालाल-घनघोरलाल-फर्म का मशहूर मालिक। मशहूर यों कि घीसालाल जिस तरह भी मिले, पैसे कमानेवाला। पैसे के लिए मक्कारी, बेईमानी, जालसाजी आदि को घीसालाल 'बिजनेस-सीक्रेट' जाननेवाला।

सारी जिंदगी घीसालाल का बाप घनघोरलाल ब्रिटिश गर्वनमेंट के उन फौलादी पंजों में पॉलिश लगाता रहा, जिनसे भारतवर्ष का दम घोंटा जा रहा था। सन् 44-47 तक घीसालाल भी अपने स्वर्गीय बाप की लीक पर ही चलता रहा। फर्क इतना कि घनघोरलाल अगर कच्छप की चाल चलता था, तो घीसालाल साँप की तरह। दोनों में बैलगाड़ी और रेलगाड़ी का अंतर - घनघोरलाल अंग्रेज को भ्रष्ट करता था, घीसालाल अंगरेज को भगानेवालों को भ्रष्ट करनेवाला। शहर में बड़ी अफवाह कि उसने एम.एल.ए. केवलचंद को भी 'तर माल' पहुँचाकर बहुत-से परमिट, लाइसेंस और ठेके प्राप्त किए हैं।

'माताजी को कोई रोग नहीं, बीमारी नहीं,' एकांत में केवलचंद से बातें करते हुए खुशामदी स्वर में घीसालाल ने पूछा - 'मेरी समझ में नहीं आता कि यों अचानक उनका बैकुंठ-गमन हो कैसे गया?'

'रोज ही यही एक प्रश्न आप करते हैं घीसालाल जी, और मैं मन मसोसकर चुप रह जाता हूँ, पर आज उत्तर देने को जी चाहता है।'

इधर-उधर देख और अच्छी तरह से समझकर कि कोई नौकर भी उसकी बात सुनने को नजदीक नहीं, एम.एल.ए. केवलचंद ने कहा - 'तेरह दिन पहले आपसे जो पचास हजार रुपए मुझे मिले, वे फले नहीं! तेरह दिनों से मैं इसी उधेड़-बुन में हूँ कि क्या अम्मा का शरीर उन रुपयों के कारण ही छूट गया? क्या ये रुपए उत्थान नहीं, पतन के अग्रदूत, उरूज नहीं, जवाल की राह पर झाड़ लगानेवाले हैं?'

'मैं समझा नहीं महाराज!' पुनः चापलूसी की घीसालाल ने - 'मैंने तो गुरुमंत्र यही माना है कि फायदे में आती हुई लक्ष्मी में, फिर वह लाभ चाहे जैसा होता हो, कोई भी पाप नहीं; जरा भी। यहाँ रुपए अंगरेज ले जाता, तो पुण्य होता, और आप की जेब में गए, तो पाप हो गया? हिः! मैं तो सौभाग्य मानता हूँ। और, अंगरेज की सेवा एक करता था - आधे दिल से - तो आपकी सौ करना चाहता हूँ। सौ जान से। आप स्वदेशी, आप

तपस्वी, आपको रुपए देना और मंदिर में चढ़ाना बराबर, मंदिर में किसी तरह का भी रुपया चढ़ाया जा सकता है। मगर उन रुपयों से माताजी के देहांत का संबंध क्योंकर हो सकता है!'

'आप मेरी माँ को निकट से जानते नहीं घीसालालजी, दया और त्याग की तो वह मूर्ति थीं। उनके उठ जाने से मेरे जीवन में जो अवकाश उत्पन्न हो गया है, उसकी पूर्ति इस जन्म में संभव नहीं।'

'माँएँ मोही होती हैं।' घीसालाल ने कहा - 'मेरी माता कपूराबाई आखिरी दम तक भगवान से यही प्रार्थना करती गईं कि मेरे घर में लक्ष्मीजी टाँग तोड़कर बैठी रहें। और साहब, उनके आशीर्वाद में कितना बल! जिस साल वह मरीं, उसके दूसरे साल ही बंगाल में अकाल पड़ा, पर कलकत्ते की घीसालाल-घनघोरलाल-फर्म ने बंगाल के बाहर पचासगुना अधिक दाम पर कई लाख मन चावल खपाकर 50 लाख रुपये पैदा किए!'

'मेरी माँ तो बड़ी धरमात्मा,' केवलचंद ने भावुकता से भरकर कहा - 'दयावती उनका नाम जरूरत से ज्यादा सार्थक। जीवन-भर उनकी बड़ी-बड़ी आँखें जीवन-भरी रहीं, याने सहज सजल। माताजी का चेहरा हमेशा ऐसा दिखता, गोया प्रसन्नता से रोकर अभी उठी हों। पिताजी की डॉक्टरी से बड़ी अच्छी आमदनी, पर वह आमदनी से इतना खुश नहीं, जितना इस बात से कि पिताजी आर्य-समाज के भारत-विख्यात सुधारक नेता थे। मैं अम्मा के मुँह से सुनी, उनकी पसंद की बात बतलाऊँ, तो स्पष्ट हो जाएगा कि मेरी माँ किस बुलंद मिजाज की थीं।

'मेरी डॉक्टरी पिताजी से भी बढ़कर चली! रुपये बरसने लगे। पर इससे अम्मा खुश नहीं हुईं। सन् **42** में जब मैं, ब्रिटिश गवर्नमेंट के विरुद्ध बगावत कर जेल में जाने के बाद, **60** दिन अनशन करने के बाद अधमरा-सा मरने के लिए छूटकर घर लाया गया, और मुझे देखने के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा, मसजिदों और मंदिरों में दुआएँ-प्रार्थनाएँ होने लगीं, तब वह मेरे पास आईं। उन्होंने कहा - **11** रुपए हैं? चाहिए।'

'रुपए क्या होंगे अम्मा**!**' उन्हें दस और एक एक का नोट देते हुए मैंने कहा।

'हनुमानजी को लड्डू चढ़ाकर बच्चों को बाँटूँगी।'

'क्यों**?**'

'मैंने मानता की थी तेरे लिए।'

'मेरे लिए क्यों? कब?'

'जब तू पेट में भी नहीं आया था।'

'ऐसी मेरी अम्मा, जिसने मेरे पेट में आने से पहले ही मनौती मान रखी थी! 'क्या मानता मानी थी माँ?'

'उसका एक किस्सा है!' अम्मा ने पुलकित होकर सुनाया - 'तेरे पिता आर्य-समाज के बड़े लीडर, बड़े ही कट्टर सुधारक। अपनी जिंदगी में उन्होंने 12 सौ मुसलमानों को शुद्ध कर हिंदू-धर्म में मिलाया था। इससे कुढ़कर कानपुर में एक पागल मुसलमान ने उन पर छुरे से 17 वार किए। उस वक्त वह न रोकते, तो कानपुर में खून की नदी बह गई होती, और मरहम-पट्टी से सजकर जब वह घर आए, तो सारा शहर उन्हें देखने को उमड़ पड़ा। जिधर सुना, उधर प्रशंसा तेरे पिता की। और, मैं आर्य-समाज में नहीं, मैं तो पुराने ढंग की सीधी औरत, पर तेरे पिता का वह गौरव देखकर मेरा हृदय गर्व से फूल आया। मैंने आँचल पसारकर अपने इष्टदेव हनुमान का ध्यान कर मनौती मानी कि हे पवनपूत, रामदूत! जिस तरह आज मेरे पतिदेव का उरूज है, वैसे ही जिस दिन मैं अपने पुत्र का उरूज देखूँगी, उस दिन आपको बेसन के लड्डू और चोखे चने चढ़ाऊँगी। वह दिन आज हनुमानजी ने दिखा दिया, सो लड्डू-चने चढ़ाकर बच्चों में बाँटूँगी।'

'बड़े ही वीर विचारों की आपकी माता थीं।' घीसालाल ने गंभीरता से कहा - 'मगर उन रुपयों की असलियत का भेद उन्हें बतलाया ही आपने क्यों, उनका स्वभाव जानते हुए?'

'मैंने नहीं बतलाया उन्हें।' केवलचंद ने कहा - 'मैं अपनी पत्नी के सामने सारी रकम रखकर कह रहा था कि उससे एक बढ़िया बँगला बनवाना है, उसी वक्त कहीं से अम्माजी वहाँ आ गईं। 'बाबू,' उन्होंने बचपन के नाम से मुझे संबोधित कर पूछा - 'इतने सारे रुपए कहाँ से आए?'

मैंने बातें बनाई बूढ़ी के सामने - 'अम्माजी, लक्ष्मी को जब आना होता है, तब नारियल की खोपड़ी के अंदर पानी की तरह जाने कैसे आ जाती है।'

'जाने कैसे आई लक्ष्मी को गृह-लक्ष्मी बनाना पुराने जमाने से पाप माना जाता है - डॉक्टरी में तो इतने रुपए मिलते मैंने कभी नहीं देखा। ये आए कहाँ से?'

'मैं एम.एल.ए. हो गया हूँ न; शहर-भर के व्यापारियों की नकेल मेरे हाथ में आ गई है। अब मैं गरीब नहीं रह सकता। यह तो आधा ही लाख है, अभी तो लाखों और आएँगे।'

जैसे वह समझ गई कि रुपया नाजायज तरीके से हासिल किया हुआ है। उन्होंने आर्डर दिया - 'उसी वक्त जिसकी चीज, उसके हवाले की जाय। ऐसा धन घर में रखना पेटियों में साँप पालने की तरह है।'

इससे नया बँगला बनेगा अम्मा! यह पाप की नहीं, तेज की कमाई है! इतने दिनों तक देश के लिए तप किया है, फिर फल नहीं मिलेगा? तुम्हारा धर्म-ज्ञान दकियानूस, जो केवल त्यागना, देना ही जानता है, दुनिया का काम त्याग और ग्रहण, दोनों में संतुलन रखने से ठीक चलता है। एम.एल.ए. हुए हैं, दरिद्र की तरह पाँव अटकाते रहेंगे, तो कुछ भी नहीं होने का। और, बँगला और मोटर हो जाएगी, तो आगे मिनिस्टरी के चांस हैं।'

'सेवा, त्याग और तप से जैसे एम.एल.ए. बना, क्या वैसे ही सेवा, त्याग और तप से मिनिस्टर भी नहीं बन सकता? पढ़-लिखकर तूने समझा क्या! मैं तो बिना पढ़े-लिखे जानती हूँ कि केवल राम-राम करने से आदमी इंद्र-पद भी पा सकता है।' अम्मा ने मेरे लोभ के विरोध में तीक्ष्ण स्वर में कहा।

'धीरे बोलो अम्मा, चिल्लाती क्यों हो?' रुखाई से मेरे मुँह से निकला - 'मैं एम.एल.ए. हूँ, मेरी भी इज्जत है। कोई सुने, तो तिल का ताड़ राई का पहाड़ खड़ा हो जाय। आज की राजनीति में पाप करना बुरा नहीं, पकड़ा जाना-मात्र बुरा है। बुराई बुरी नहीं, बदनामी बुरी है। आप लोग पुराने जमाने की राम-रट लगाएँ, पर राम-नाम लेने से इंद्रासन तब मिलता है, जब गांधीजी की तरह कोई गोली खाकर पहले जान दे दे।'

'इस पर अम्मा चुप ही रहीं। एक बार मेरी ओर बड़ी-बड़ी आँखों से यों देखकर, जिसका अर्थ यह कि - 'अच्छा रे, मेरे पेट का पैदा मुझे ही ज्ञान सिखाने चला!' और, वह तेजी से हमारे कमरे के बाहर हो गईं। रुपए का मोह कहाँ था? मेरी मूर्खता, मैंने अम्मा की नाराजी पर ध्यान नहीं दिया, और दूसरे कामों के सिलसिले में शहर चला गया। लौटा भी जरा देर से, सवा बारह बजे।

'और, देखता क्या हूँ कि अम्मा चौकी पर तड़प रही हैं, सारा घर सेवा में लगा है। स्त्री से अलग बुलाकर मैंने पूछा - 'क्या हुआ अम्माजी को? कब से यह हालत है उनकी!'

'यह हालत तो अभी **15-20** मिनट से'; स्त्री ने बतलाया - 'पर हमारे कमरे से बाहर निकलते ही, तुम्हारे बाहर जाते ही, वह बहुत ही बेकल बन गई थीं।'

'कुछ कह रही थीं।'

'आदमी से कुछ भी नहीं, वह घर के पूजा-गृह में जाकर देवता के सामने हिचक-हिचककर, 'पुक्काफाड़' कर रोने और सिर पीटने लगीं।

'क्या!'

'उन्होंने कहा - 'हे प्रभो! क्या यही दिन देखने के लिए मैंने तुम्हारी इतनी सेवा की थी? पर मैं ही पापिनी हूँ भगवान! तुम्हारा कोई दोष नहीं। अपराध मेरा, मैंने माना। लेकिन अब तो दया करो नाथ! अब तो दया करो। जब माता-पिता की नीयत और बुद्धि पर लड़के संदेह करने लगें, तब भाग्यवान सो, जिसे भगवान - नहीं तोय मराज ही सही - बुला लें।'

'पत्नी जिस ठंडे दिल से कथा सुना रही थी, मुझे अच्छा नहीं लगा, या यों कहिए कि अपनी कमजोरी का परिणाम सामने आते देख गुस्सा आया औरत पर। मैंने पूछा - 'वह सिर पीटती रहीं, और तुम सिनेमा के तमाशे देखती रही - ऐं?'

'मैं करती क्या, उन्होंने अंदर से कुंडी लगा रक्खी थी। तब से बराबर मैं बाहर से 'माँजी! माँजी!' पुकारती रही। थोड़ी देर पहले दरवाजा खोलकर वह बाहर आई। मैंने देखा -ऐसा रूप तो मैंने उनका कभी देखा ही नहीं था - साक्षात भगवती, चेहरे से जैसे लपट निकल रही थी। 'बहू!' उन्होंने कहा - 'मेरी तबियत अच्छी नहीं। देह जैसे ऐंठी जा रही है। दिल जैसे डूबा जा रहा है। वे रुपए घर में हैं न?' उन्होंने कठोर दृष्टि से देखकर पूछा। मैं चुप रही। और वह कटे रूख की तरह गिर पड़ीं। हाथ-पाँव ऐंठने लगे। घर के सब लोगों ने मिलकर उन्हें चौकी पर लिटाया ही था कि तुम आए। मगर बातें फिर होंगी, पहले कोई डॉक्टर-वैद्य...।'

इसी समय चौकी के पास से घर के दूसरे लोग चीख-चिल्ला पड़े - 'दौड़ो, दौड़ो, अम्माजी...।' और जब तक हम पहुँचे, तब तक वह मर्त्यलोक का वातावरण छोड़ दिव्य-लोक की सीमा में पहुँच चुकी थीं।'

'भाग्यवान थीं माताजी!' घीसालाल ने किस्सा कोताह करने के इरादे से कहा -'अनायास मरण बड़ा उत्तम माना जाता है। फिर अब उन्हें देखना ही क्या था। पति का उरूज देखा, उससे भी बढ़कर पुत्र का उरूज।'

'मगर सेठजी!' केवलचंद के मुँह से भावावेश में सत्य निकल पड़ा - 'पति का उरूज देखने से तो अम्मा को एक नई जिंदगी का संदेश मिला था, और पुत्र का उरूज देखने

से दाहन मरण का। तभी से बराबर यही विचार मेरे दिमाग में प्रेत-तांडव कर रहा है कि क्या अम्मा की मृत्यु का कारण वह रकम ही नहीं है? अगर है, तो इस हत्यारी संपत्ति से सिवा अपमान, मृत्यु और नरक के, दूसरा होगा क्या?'

'अपना नया बँगला जो बनेगा, उसका नाम माताजी के नाम पर हो - 'दयावती-निवास' या 'दया-धाम'। राजनीति निपुण होकर भी आप कहाँ के भावुक बन चले। अजी, माताजी ने आपके उरूज - सूर्योदय की हलकी लाली-भर देखी थी, पौ के तो अब बारह होनेवाले हैं। प्रकाश तो अब फूटनेवाला है। पचास हजार - भैयाजी, वर्ल्ड-वार के बाद पचास हजार तो चमार-सियार के पास भी हो गए हैं आजकल। हम-आप-जैसे गृहस्थों के पास दस-पाँच लाख रुपए भी अगर नहीं हुए तो सिवा रोटी-कपड़े के ऊँचे विचार सूझेंगे कहाँ से?'

'ऊँचे विचार? दस-पाँच लाख? विचारों से लाखों का क्या संबंध सेठजी?'

'बहुत।' घीसालाल ने सुनाया - 'आप जैसे बुद्धिमान आदमी को बतलाना कि यह आर्थिक युग है, न कि आध्यात्मिक, धृष्टता होगी। आप, क्षमा करें, एम.एल.ए. बावन गंडे होंगे, पर पूछ उन्हीं की है, उरूज उन्हीं का है, जिनके पास चकाचक माल है। मैं झूठ कहता हूँ?'

और देश-भक्त एम.एल.ए. चुप रहा, पर उसके चेहरे पर यही भाव कि मालदार आदमी तथा खूबसूरत माशूक के मुँह से झूठ भी सच मालूम पड़ता है। बकौल उस्ताद 'गालिब' -

'कहा तुमने कि क्यों हो गैर से मिलने में रुसवाई?

बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहियो कि हाँ, क्यों हो?'